जैन दर्शन में हेतु लक्षण

धर्मचन्द जैन *

भारतीय दर्शन में जहाँ अनुमान प्रमाण की चर्चा है वहाँ हेतु की भी चर्चा है। हेतु शब्द का प्रयोग जैनागमों में प्रमाण के अर्थ में भी हुआ है[1], किन्तु यहाँ न्यायशास्त्र में प्रयुक्त उस प्रसिद्ध हेतु की चर्चा की जायेगी, जो साध्य का गमक होता है। भारतीय दर्शन में हेतु के स्थान पर लिंग, साधन, व्याप्य, गमक आदि शब्दों का भी प्रयोग होता रहा है।

हेतु को साध्य का गमक स्वीकार करने में दार्शनिकों के मध्य कोई विवाद नहीं है किन्तु हेतु के स्वरूप का निर्धारण करने के संबंध में तीन परम्परायें हैं—१. त्रैरूप्य परम्परा, २. प्यच-रूप्य परम्परा, तथा ३. जैन एवं मीमांसक परम्परा। यद्यपि इनके अतिरिक्त द्विरूप[2] षड्रूप[3] एवं सप्तरूप[4] हेतु का प्रतिपादन करने वाली परम्पराओं के भी संकेत प्राप्त होते हैं किन्तु ये परम्पराएं इतनी प्रसिद्ध न हो सकीं जितनी त्रैरूप्य, पांचरूप्य एव अविनाभावित्व मात्र का प्रतिपादन करने वाली परम्परायें प्रसिद्ध हुईं।

त्रैरूप्य परम्परा—इस परम्परा में हेतु के तीन रूप अथवा उसकी तीन विशेषतायें मानी गई हैं—पक्षधर्मत्त्व, सपक्षसत्त्व। एवं विपक्षसत्त्व। इस परम्परा के प्रतिपादक हैं–वैशेषिक, सांख्य एवं बौद्ध। वैशेषिकदर्शन में उसी हेतु को अनुमेय का अनुमापक स्वीकार किया गया है जो पक्ष-धर्मत्व, सपक्षसत्त्व एवं विपक्षव्यावृत्ति रूपों से युक्त हो, जैसाकि प्रशस्तपाद (५वीं सदी) ने कहा है—

यदनुमेयेन सम्बद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते।
तदभावे च नास्त्येव तल्लिगमनुमापकम् ॥[5]

अर्थात् जो लिंग अनुमेय से सम्बद्ध हो, सपक्ष में प्रसिद्ध हो तथा विपक्ष में विद्यमान न हो वही अनुमेय का अनुमापक होता है। यथा 'पर्वत में अग्नि है, क्योंकि वहाँ धूम है" इस

---

* शिक्षक शोधार्थी (टीचर रिसर्च फेलो), संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
पा० वि० शोध संस्थान स्वर्ण जयन्ती अधिवेशन में पुरस्कृत लेख

१. स्थानांगसूत्र—"हेऊ चउव्विहे पन्नत्ते तं जहा—पच्चक्खे अनुमान उवमे आगमे" सूत्र ३३८

२. न्यायवार्तिक, १—१—३४

३. हेतुबिन्दु, पृ० ६८ एवं हेतुबिन्दुटीका पृष्ठ २०५ (गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा) षड्लक्षणो हेतुरित्यपरे। त्रीणि चैतानि अबाधितविषयत्वं विवक्षितैकसंख्यत्वं ज्ञातत्वं च।

४. न्यायविनिश्चयविवरण (वादिराजकृत) २।५५, पृष्ठ १७८-१८०
यथा—"अन्यथानुपपन्नत्वादिभिश्चतुर्भिः पक्षधर्मत्वादिभिश्च सप्तलक्षणो हेतुरिति त्रयेणेति किम्।"

५. प्रशस्तपादभाष्यम्—अनुमानप्रकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमान वाक्य में पर्वत "पक्ष" है, अग्नि "साध्य" है तथा धूम "हेतु" है। धूम हेतु, पक्ष पर्वत में विद्यमान है, "सपक्ष" महानस आदि में प्रसिद्ध है तथा विपक्ष जलाशय आदि में उपलब्ध नहीं होता है अतः त्रैरूप्यवान् होने के कारण धूम हेतु अग्नि रूप साध्य का गमक है।

वैशेषिकों के समान सांख्यदर्शन में भी हेतु के त्रिरूपत्व का निरूपण किया गया है,[1] किन्तु सांख्यदर्शन में इसकी विशेष चर्चा नहीं है।

हेतु के त्रिरूपत्व की सर्वाधिक प्रसिद्धि बौद्धदर्शन में हुई। बौद्धों ने हेतु के त्रैरूप्य पर जितना विशद एवं विस्तृत प्ररूपण किया उतना भारतीय दर्शन में अन्यत्र नहीं हुआ। दिङ्नाग (४८०-५४०) अथवा उनके शिष्य शंकरस्वामी प्रणीत "न्यायप्रवेश" में त्रैरूप्य का प्रतिपादन करते हुए कहाहै "हेतु स्त्रिरूयम्–किं पुनस्त्रैरूप्य, पक्षधर्मत्वं, सपक्षे सत्त्वं, विपक्षे चासत्त्वमिति।'[2] महान् बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति (७वीं सदी) त्रिरूपता में संभावित दोषों का निराकरण करने हेतु अवधारणार्थक 'एव' शब्द का भी यथास्थान प्रयोग करते हुए 'न्यायबिन्दु' में कहते हैं—त्रैरूप्यं पुनर्लिङ्गस्यानुमेये सत्त्वमेव, सपक्ष एव सत्त्वमसपक्षे चासत्त्वमेव निश्चितम्"[3] अर्थात् लिंग अनुमेय (पक्ष) में होता ही है, सपक्ष में ही होता है तथा विपक्ष (असपक्ष) में होता ही नहीं है। ये तीनों रूप जिसमें निश्चित हों वही लिंग है। हेतु की त्रिरूपता का निरूपण तीन हेत्वाभासों का निराकरण करने के लिए किया गया है। पक्षधर्मत्व के द्वारा "असिद्ध" सपक्ष सत्त्व के द्वारा "विरुद्ध एवं विपक्षासत्त्व के द्वारा "अनेकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास का निराकरण किया गया है।[4] वैशेषिक दर्शन में अनेकांतिक के स्थान पर "संदिग्ध" शब्द का प्रयोग किया गया है।[5]

पांचरूप्य परम्परा

पांचरूप्य परम्परा के प्रस्तावक एवं समर्थक गौतमीय नैयायिक (उद्योतक ६ठीं शती) के पूर्व पांचरूप्य का उल्लेख नहीं मिलता है। पांचरूप्य हैं—पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षासत्त्व, अबाधितविषयत्व एवं असत्प्रतिपक्षत्व। न्याय-परम्परा में हेतु को द्विलक्षण एवं त्रिलक्षण भी माना गया है।[6] साध्य में व्यापक तथा उदाहरण में विद्यमान होने से उसे द्विलक्षण तथा अनुदाहरण अर्थात् विपक्ष में अविद्यमान होने से उसे त्रिलक्षण कहा गया है,

---

१. सांख्यकारिका—माठरवृत्ति का. ५

२. न्यायप्रवेश, गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा, पृ० १

३. न्यायबिन्दु, २।४

४. हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु निर्णयस्तेन वर्णितः।
असिद्धविपरीतार्थं व्यभिचारिविपक्षतः।—प्रमाणवार्तिक, बौद्ध भारती सं० ३।१५

५. विपरीतमतो यत्स्यादेकेन द्वितयेन वा।
विरुद्धासिद्धसंदिग्धमलिंगं काश्यपोऽब्रवीत्॥—प्रशस्तपादभाष्य, अनुमानप्रकरण

६. न्यायवार्तिक (उद्योतकर) १।१।३४ एवं १।१।५ डॉ दरबारीलाल कोठिया ने इसे उद्धृत किया है—"जैन तर्कशास्त्र में अनुमान विचार", पृ० १९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु न्यायदर्शन में पंचलक्षण हेतु को स्थान मिलने के पश्चात् द्विलक्षण एवं त्रिलक्षण परम्परा लुप्त-सी हो गयी। यही नहीं अपितु बौद्धदर्शन सम्मत त्रैरूप्य में अव्याप्ति दोष दिखलाकर उसका खंडन भी किया गया है।[1] न्यायदार्शनिकों का मानना है कि हेतु प्रत्यक्ष एवं आगम से बाधित भी नहीं होना चाहिए तथा उसका कोई प्रतिपक्षी हेतु भी नहीं होना चाहिये। इन पाँच रूपों का प्रतिपादन वे पाँच प्रकार के हेत्वाभावों का निराकरण करने हेतु करते हैं। बौद्धों के द्वारा सम्मत हेत्वाभासों के अतिरिक्त ये कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास का अबाधित-विषयत्व द्वारा तथा प्रकरण हेत्वाभास का असत्प्रतिपक्षत्व द्वारा निराकरण करते हैं। पंच-लक्षण हेतु से ही परोक्ष साध्य का ज्ञान होता है, ऐसा जयन्तभट्ट (९वीं शताब्दी) ने "न्यायमंजरी" में प्रतिपादित करते हुए कहा है—

पंचलक्षणकाल्लिगाद् गृहीतान्नियमस्मृतेः।
परोक्षे लिंगिनि ज्ञानमनुमानं प्रचक्षते॥[2]

अर्थात् पंचलक्षण हेतु के गृहीत होने से व्याप्ति नियम की स्मृति होती है तथा उससे जो परोक्ष लिंगी अर्थात् साध्य का ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं।

न्यायदर्शन में हेतु के तीन प्रकार हैं—अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी एवं केवलव्यतिरेकी। उनमें मात्र अन्वयव्यतिरेकी हेतु में ही पंचरूप होते हैं। केवलान्वयी एवं केवलव्यतिरेकी हेतु में चार रूप ही पाये जाते हैं क्योंकि केवलान्वयी हेतु में विपक्षासत्त्व तथा केवलव्यतिरेकी हेतु में सपक्षसत्त्व रूप उपलब्ध नहीं होते।

मीमांसक मत—मीमांसादर्शन में त्रैरूप्य, पांचरूप्य आदि का प्रतिपादन नहीं किया गया। वहाँ तो हेतु को नियाम्य (व्याप्य) तथा साध्य को नियामक (व्यापक) कहकर उनमें व्याप्ति का प्रतिपादन किया गया है, जिससे दार्शनिकों का कोई विरोध प्रतीत नहीं होता है।

जैन मान्यता—

जैनदर्शन में हेतु के स्वरूप का निरूपण सर्वथा अनूठा है। इसमें हेतु का एक लक्षण अंगीकार किया गया है और वह है, उसका साध्य के साथ निश्चित अविनाभाव।[3] जैन दार्शनिकों की मान्यता है कि साध्य के साथ अविनाभाव अथवा अन्यथानुपपत्ति ही हेतु का एकमात्र लक्षण है। यदि हेतु में अविनाभावित्व है तो वह त्रैरूप्य एवं पांचरूप्य के अभाव में भी साध्य का गमक होता है और यदि उसमें अविनाभावित्व नहीं है तो त्रैरूप्य एवं पांचरूप्य के होने पर भी साध्य का गमक नहीं होता।

---

१. उदयन एवं जयन्तभट्ट की रचनाओं में देखा जा सकता है

२. स्याद्वादरत्नाकर, भाग ३, पृ० ५२३ पर उद्धृत

३. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः, परीक्षामुख ३।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रैरूप्य निरास एवं अविनाभावित्व समर्थन—

त्रैरूप्य की निरर्थकता सिद्ध करते हुए जैन दार्शनिकों ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—"गर्भस्थ मैत्रीतनय श्याम वर्ण होगा, मैत्री का पुत्र होने से, उसके अन्य पुत्रों के समान"। उस उदाहरण में विद्यमान "मैत्रीपुत्रत्वात्" हेतु गर्भस्थ पुत्र पक्ष में विद्यमान है। मैत्री के अन्य पुत्र रूप सपक्ष में विद्यमान हैं तथा अन्य स्त्री के गौरवर्ण पुत्र रूप विपक्ष में विद्यमान नहीं है। इस प्रकार इस हेतु में पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व एवं विपक्षासत्त्व तीनों रूप विद्यमान हैं तथापि यह साध्य के साथ अविनाभावी नहीं होने के कारण सहेतु नहीं है, हेत्वाभास है।[1]

बौद्ध दार्शनिक भी इस हेतु को साध्य के साथ प्रतिबंध अथवा अविनाभाव युक्त न होने के कारण हेत्वाभास मानते हैं जैसा कि धर्मोत्तर (७वीं-८वीं शताब्दी) के कथन से ज्ञात होता है—"तथा च सति स श्यामः तत्पुत्रत्वाद् दृष्यमानपुत्रवद् इति तत्पुत्रत्वं हेतुः स्यात्। तस्मान् नियमवतोरेवान्वयव्यतिरेकयोः प्रयोगः कर्त्तव्यो येन प्रतिबन्धो गम्येत साधनस्य साधनेन।"[2] इसीलिये धर्मकीर्ति (७वीं शती) ने अविनाभाव के द्योतक "एव" शब्द का प्रयोग किया है—"विपक्षे चासत्त्वमेव निश्चितम्।" हेतुबिन्दु प्रकरण में भी धर्मकीर्ति ने अविनाभाव नियम के अभाव में हेतुओं को हेत्वाभास कहा है।[3] यह बात भिन्न है कि ये पक्षधर्मत्व आदि तीन रूपों में ही "एव" का प्रयोग कर त्रिविध हेतु की साध्य के साथ अविनाभाविता स्वीकार करते हैं।

न्यायदार्शनिक भी "तत्पुत्रत्व" हेतु को औपाधिक संबंध के कारण हेत्वाभास मानते हैं। ये साध्य के साथ लिंग का स्वाभाविक सम्बन्ध होने पर ही लिंग को साध्य का गमक सिद्ध करते हैं।

स्वाभाविक संबंध का अर्थ है व्याप्ति।[4] और वह व्याप्ति जैनदर्शन में प्रस्तुत "अविनाभाव" का समानार्थक शब्द है। जयन्तभट्ट ने तो स्पष्ट शब्दों में पंच लक्षण हेतु में अविनाभाव का समापन कहा है—"एतेषु पंचलक्षणेषु अविनाभावः समाप्यते।"[5]

---

१. जैसा कि कहा है—स श्यामस्तत्पुत्रत्वाद् दृष्टा श्यामा यथेतरे।
इति लक्षणो हेतुर्न निश्चित्यै प्रवर्तते॥
तत्त्वसंग्रह (शांतरक्षित) कारिका १३६९—जैन दार्शनिक पात्रस्वामी के मत के रूप में प्रस्तुत।

२. न्यायबिन्दु टीका २-५ की व्याख्या, पृ० ११०, साहित्य भंडार, मेरठ प्रकाशन

३. पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुस्त्रिधैव सः।
अविनाभावनियमात् हेत्वाभासास्ततोऽपरे॥—हेतुबिन्दु प्रकरण पृ० ५२ एवं प्रमाणवार्तिक ३।१

४. स्वाभाविकश्च सम्बन्धो व्याप्तिः, तर्कभाषा अनुमाननिरूपण, पृ० ७६ (विश्वेश्वर सिद्धांत-शिरोमणि संपादित), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, १९७७ ई० सं०

५. वाचस्पतिमिश्र ने भी न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका में कहा है—यद्यप्यविनाभावः पंचषु चतुर्षु वा लिंगस्य समाप्यत इत्यविनाभावेनैव सर्वाणि लिंगरूपाणि संगृह्यन्ते—न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका १।१।५, पृ० १४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः यह स्पष्ट है कि साध्य के साथ अविनाभाव के बिना हेतु साध्य का गमक नहीं होता। यदि अविनाभाव है एवं त्रैरूप्य नहीं है तो भी हेतु साध्य का गमक होता है यथा—"एक मुहूर्त के अनंतर शकट नक्षत्र का उदय होगा, क्योंकि अभी कृत्तिका नक्षत्र का उदय हुआ है" इस अनुमान वाक्य में कृत्तिकोदय हेतु शकटोदय साध्य का गमक है। यहाँ इसमें पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व एवं विपक्षासत्त्व रूप त्रिरूपता का अभाव है तथापि जैन दार्शनिकों के अनुसार कृत्तिकोदय की शकटोदय के साथ पूर्वचर रूप में क्रमभाव अविनाभाविता है।[1] अतः कृत्तिकोदय शकटोदय का गमक है। इस प्रकार अविनाभावित्व ही प्रधान लक्षण है। उसके अभाव में त्रिरूपता आदि का कथन व्यर्थ है, इसीलिए जैन नैयायिक पात्रस्वामी ने त्रिलक्षणदर्शन[2] ग्रंथ में प्रबल शब्दों में कहा है—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

अन्यथानुपपन्नत्व शब्द अविनाभावित्व का ही पर्याय है। जहाँ अन्यथानुपपन्नत्व है वहाँ पक्ष धर्मत्व आदि रूपत्रय से क्या प्रयोजन ? तथा जहाँ अन्यथानुपपन्नत्व नहीं है वहाँ भी रूपत्रय निरर्थक है। जैन दार्शनिक पात्रस्वामी द्वारा की गयी यह आलोचना भारतीय दार्शनिक जगत् में खलबली पैदा कर गयी इसलिए न केवल जैन दार्शनिकों ने इस कारिका को अपने न्यायग्रंथों में उद्धृत किया है अपितु शांतरक्षित जैसे बौद्ध नैयायिकों को भी अपनी लेखनी पात्रस्वामी के इस कथन को उद्धृत करने हेतु उठानी पड़ी।[3]

पांचरूप्य निरास—

त्रैरूप्य के समान पांचरूप्य भी जैन दार्शनिकों द्वारा अनुपपन्न ठहराया गया है। यथा "यह धूम अग्निजन्य है, सत्त्व होने के कारण पूर्वोपलब्ध धूम के समान इस वाक्य[4] में "सत्त्व" हेतु पक्षीकृत धूम में विद्यमान है, पूर्वदृष्ट धूम रूप सपक्ष में विद्यमान है, विपक्ष में अविद्यमान है, धूम का अग्नि से उत्पन्न होना प्रत्यक्ष एवं अनुमान से भी बाधित नहीं है तथा धूम का अग्नि के अभाव में उत्पन्न होने का साधक प्रतिपक्षी हेतु भी अविद्यमान है, इस प्रकार पाँच रूप विद्यमान है तथापि "सत्त्वात्" हेतु का साध्य के साथ अविनाभाव नहीं है इसलिए यह हेतु धूम के अग्निजन्यत्व रूप साध्य का गमक नहीं, फलतः हेत्वाभास है। इसलिए विद्यानन्द ने पात्रस्वामी का अनुसरण करते हुए पांचरूप्य की खण्डनविधायिनी कारिका का निर्माण किया है—

---

१. माणिक्यनन्दि ने दो प्रकार का अविनाभाव बतलाया है—सहभाव एवं क्रमभाव। यथा—सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः—परीक्षामुख, ३।१६

२. इस ग्रन्थ का उल्लेख अनन्तवीर्यकृत सिद्धिविनिश्चय टीका ६।२, पृ० ३७१-७२ में हुआ है।

३. द्रष्टव्य तत्त्वसंग्रहकारिका, १३६८

४. स्याद्वादरत्नाकर, भाग ३, पृ० ५२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यथानुपपन्नत्वं रूपैः किं पंचभिः कृतम् ।
नान्यथानुपपन्नत्वं रूपैः किं पंचभिः कृतम् ॥[1]

यदि साध्य के साथ हेतु का अन्यथानुपपन्नत्व निश्चित है तो पाँचरूप्य के अभाव में भी कृत्तिकोदय हेतु शकटोदय साध्य का गमक हो जाता है तथा अन्यथानुपपन्नत्व नहीं है तो मत्त्वात् हेतु के समान पाँचरूप्य भी निरर्थक है ।

जैन हेतु लक्षण—

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साध्य के साथ अविनाभावित्व हुए बिना हेतु साध्य का गमक नहीं होता । हेतु को परिभाषित करते हुए जैन दार्शनिकों ने सर्वत्र यही प्रतिपादित किया है । सिद्धसेन (५वीं शती) रचित न्यायावतार में कहा गया है— अन्यथानुपपन्नत्वं हेतोर्लक्षणमीरितम्[2], अर्थात् हेतु का लक्षण अन्यथानुपपन्नत्व है । प्रसिद्ध जैन नैयायिक अकलंक (८वीं शती) ने कहा है—"साधनं प्रकृताऽभावेऽनुपपन्नत्वम्"[3] अर्थात् साध्य के अभाव में हेतु का होना अनुपपन्न है । वे स्वयं प्रमाणसंग्रह की वृत्ति में इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं–"साध्यार्थाऽसम्भवाभावनियमनिश्चयैकलक्षणो हेतुः" अर्थात् साध्य अर्थ के अभाव में जिसका अभाव होना निश्चित है ऐसा एक लक्षण वाला हेतु है । भट्ट कुमारनन्दि के हेतु लक्षण को विद्यानन्द ने उद्धृत किया है--अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणं लिंगमंग्यते ।[4]

हेतु लक्षण की यही सरणि माणिक्यनन्दि (११वीं शती) एवं देवसूरि (१२वीं शती) द्वारा भी अपनायी गयी है किन्तु वे अकलंक की प्रमाणसंग्रह वृत्ति की भाँति निश्चय शब्द का भी प्रयोग करते हैं । माणिक्यनन्दि के शब्दों में साध्य के साथ जिसका अविनाभावित्व निश्चित हो वह हेतु है[5] तथा देवसूरि के शब्दों में निश्चित अन्यथानुपपत्ति रूप एक लक्षण वाला हेतु है ।[6]

हेतुलक्षण का हेतु भेदों में सामंजस्य—

जैन दार्शनिकों ने हेतु के अनेक भेद प्रतिपादित किये हैं । माणिक्यनन्दि एवं देवसूरि

---

१. प्रमाणपरीक्षा; वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन, पृ० ४९
विद्यानन्द ने पांचरूप्य हेतु का खंडन करने हेतु '-स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितस्तत्पुत्रवत्" उदाहरण दिया है जो अन्य पात्रस्वामी आदि दार्शनिकों ने त्रैरूप्य के खंडन में प्रस्तुत किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि पात्रस्वामी के समय तक पांचरूप्य परम्परा को विशेष स्थान नहीं मिला था, अतः उनके द्वारा पांचरूप्य परम्परा का खंडन नहीं किया गया । यदि किया जाता तो त्रैरूप्य खंडन के समान वह भी उद्धृत होता ।

२. न्यायावतार, २२

३. प्रमाणसंग्रहकारिका-२१ एवं न्यायविनिश्चयकारिका, २६९ (दोनों अकलंकग्रन्थत्रय में हैं)

४. प्रमाणपरीक्षा, पृ० ४३, (वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट)

५. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः, परीक्षामुख, ३।११

६. निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुः—प्रमाणनयतत्त्वालोक, ३।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो क्रमशः बाईस[1] एवं पच्चीस[2] भेदों का प्रतिपादन करते हैं किन्तु अकलंक से प्रारंभ कर देवसूरि तक जैनदर्शन में जिन विशिष्ट एवं नवीन हेतुओं का प्रतिपादन हुआ है, वे हैं–कारण–हेतु, पूर्वचरहेतु, उत्तरचरहेतु एवं सहचरहेतु। ये चारों नाम जैन दार्शनिकों की अपनी उपज है। 'कारणहेतु' प्राचीन न्यायवैशेषिक दर्शन में कल्पित पूर्ववत् हेतु का संशोधित रूप है एवं पूर्वचरहेतु मीमांसा श्लोकवार्तिक[3] में कथित कृत्तिकोदय हेतु पर आधृत है। तथापि ये जैन दार्शनिकों द्वारा बलवत्तर रूप में प्रस्तुत एवं पुष्ट किये गये हैं।[4]

यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि जैन दार्शनिकों द्वारा स्वीकृत हेतु लक्षण इन नवीन हेतुओं में कहाँ तक सामंजस्य बिठाता है।

कारण हेतु—कार्य से कारण का अनुमान जितना अव्यभिचरित देखा जाता है, उतना कारण से कार्य का अनुमान नहीं।[5] कारण से कार्य का अनुमान करना व्यभिचारयुक्त होता है। इसीलिए बौद्ध दार्शनिकों ने कारण हेतु को स्वीकार नहीं किया है। न्याय दार्शनिकों ने भी उत्तरवर्ती साहित्य में इसे महत्त्व नहीं दिया है। जैन दार्शनिकों ने कारण हेतु की मान्यता में दोष तो देखा किन्तु उसे समाप्त नहीं करके उसे निर्दिष्ट बनाने का प्रयास किया फलतः ऐसे कारण को हेतु कहा जो अप्रतिबंधक सामर्थ्य से युक्त हो अर्थात् वही कारण हेतु हो सकता है जिसके द्वारा कार्य की उत्पत्ति निश्चित हो[6] किन्तु इस हेतु की सिद्धि में जिन उदाहरणों को प्रस्तुत किया जाता है वे सर्वथा व्यभिचार मुक्त प्रतीत नहीं होते। यथा—"अस्त्यत्र छाया छत्रात्" अर्थात् 'यहाँ छाया है क्योंकि छत्र है'। इस उदाहरण में रात्रि में रखे छत्र से छाया का अनुमान करना तथा इसी प्रकार बादलों से वर्षा का अनुमान करना व्यभिचरित देखा जाता है।

कारण के द्वारा कार्य का अनुमान करने में अथवा कारण को हेतु मानने में सबसे बड़ी बाधा यह खड़ी होती है कि कारण कार्य के अभाव में भी रह सकता है जब कि जैन दार्शनिकों के अनुसार हेतु साध्य के अभाव में नहीं रहता। अतः कारण को हेतु मानने में स्पष्टतः साध्य के साथ निश्चित अविनाभाविता रूप लक्षण का उल्लंघन होता है जो विचारणीय है।

पूर्वचर हेतु—पूर्वचार कृत्तिका नक्षत्र को उत्तरचार शकटनक्षत्र के उदय का हेतु मानने में भी यही दोष आता है। कृत्तिकानक्षत्र शकटनक्षत्र के उदय के अभाव में भी उदित हो सकता है। अर्थात् साध्य शकटोदय के अभाव में भी हेतु कृत्तिकोदय देखा जाता है।

---

१. परीक्षामुख, परि. ३; सूत्र ५३ से ८९

२. प्रमाणनयतत्त्वालोक, ३।५४-१०९

३. कृत्तिकोदयमालक्ष्य रोहिण्यासत्तिक्लृप्तिवत्— मीमांसाश्लोकवार्तिक, अनुमानपरिच्छेद, कारिका १३

४. द्रष्टव्य-प्रमेयकमलमार्तण्ड, भाग-२, पृ० ३८९-३९९ एवं स्याद्वादरत्नाकर, भाग-३, पृ० ५८६-९४

५. नावश्यं कारणानि कार्यवन्ति भवन्ति।

६. परीक्षामुख. ३।५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरचर हेतु—उत्तरचर हेतु में तो फिर भी यह दोष नहीं आता है क्योंकि उसमें साध्य के होने पर ही हेतु होता है, उसके अभाव में नहीं अर्थात् शकटोदय हेतु के पूर्व कृत्तिकोदय साध्य विद्यमान रहता है।

सहचर हेतु—सहचर वस्तुओं में कौन साध्य है तथा कौन हेतु, यह निश्चित नहीं रहता है, बस उसकी सहचारिता के कारण एक के द्वारा दूसरे का अनुमान कर लिया जाता है। यथा आम्रफल में रूप है क्योंकि रस है। इस उदाहरण में रस द्वारा रूप का अनुमान किया गया है किन्तु सहचारिता के कारण रूप द्वारा रस का भी अनुमान किया जाना संभव है इस प्रकार कौन साध्य है एवं कौन हेतु, इस प्रकार की निश्चितता नहीं होती है तथापि एक के अभाव में दूसरे का अभाव दृष्टिगोचर होने से इसे हेतु रूप में स्वीकार करना हेतु लक्षण से अव्याप्त नहीं रहता।

माणिक्यनंदि ने यद्यपि सहभाव एवं क्रमभाव रूप से अविनाभाव के दो भेद करके सहभाव अविनाभाव में सहचर, व्याप्य एवं व्यापक हेतुओं को समाविष्ट करने का प्रयास किया है तथा क्रमभाव अविनाभाव में कार्य, कारण, पूर्वचर एवं उत्तरचर हेतुओं को समायोजित करने का प्रयत्न किया है।[1] तथापि कारण एवं पूर्वचर हेतु में इसकी सफलता साध्याविनाभावित्व नियम का अपकथन किये बिना संभव नहीं है।

जैन दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत अन्यथानुपपन्नत्व अथवा अविनाभावित्व लक्षण यद्यपि जैनेतर दार्शनिकों द्वारा गृहीत विपक्षव्यावृत्ति रूप व्यतिरेक से साम्य रखता है तथापि जैन दार्शनिक इसी एक लक्षण द्वारा अन्वय एवं व्यतिरेक दोनों रूपों का ग्रहण कर लेते हैं। जैन दार्शनिकों ने साध्याविनाभावित्व लक्षण से तथोपपत्ति रूप भी फलित कर लिया है। यही कारण है कि जैन दर्शन में हेतु प्रयोग दो प्रकार का प्रतिपादित किया जाता है—अन्यथानुपपत्ति एवं तथोपपत्ति।[2] साध्य के अभाव में हेतु का अभाव अन्यथानुपपत्ति प्रयोग है। तो साध्य के होने पर ही हेतु का होना तथोपपत्ति है।[3] यहाँ विशेष ज्ञातव्य यह है कि न्यायदर्शन में जहाँ अन्वय प्रयोग में हेतु के होने पर साध्य का होना निश्चित किया जाता है वहाँ जैनदर्शन में तथोपपत्ति प्रयोग में साध्य के होने पर ही हेतु का होना निश्चित बतलाया जाता है। व्यतिरेक प्रयोग एवं अन्यथानुपपत्ति प्रयोग में पूर्ण साम्य है।

---

१. सहक्रमभाव नियमोऽविनाभावः।
सहचारिणोः व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः
पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः।—परीक्षामुख, ३।१६, १७, १८

२. सिद्धसेन, न्यायावतार कारिका १७—
"हेतुस्तथोपपत्त्या वा प्रयोगोऽन्यथापि वा।
द्विधान्यतरेणापि साध्यसिद्धिर्भवेदिति॥

३. सत्ये प्रमाणनयतत्त्वालोक—३।३१—
"सत्येव साध्ये हेतोरुपपत्तिस्तथोपपत्तिः असति साध्ये हेतोरनुपपत्तिरेवाऽन्यथानुपपत्तिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org